International Journal of Academic Research
ISSN: 2348-7666 Vol.2, Issue-2(5), April-June, 2015

भारतीय संस्कृति के मौलिक आधार

मोहित जैन,
शोधार्थी,
सांई नाथ विश्वविद्यालय, रांची (झारखंड)

किसी भी देश एवं जाति की सभ्यता, संस्कृति, धर्म और दर्शन उसकी शताब्दियों की विचार–साधना के सत्फल होने के कारण तथा आरम्भिक विचारों के परिमार्जित एवं परिशोधित होने के अनन्तर ही सुनिश्चित और परिपक्व होते हैं। भारतीय संस्कृति, धर्म और दर्शन के इतिहास का रहस्य उसकी सदियों की साधना के रहस्य में निहित है जिससे भारतीय ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ। भारत की शताब्दियों के साधनापूर्ण अनुभवों के कारण की भारतीय चिन्तनधारा भारतीय जीवन की बहुमुखी शाखाओं को सींचती हुई अनवरत बहती चली आ रही है। इससे स्पष्ट है विकसित और व्यवस्थित भारत की पृष्ठभूमि में विद्यमान विचार, धर्म, संस्कृति और दर्शन अत्यन्त प्राचीन हैं। इनका शोध अनुभवी पुरुषों ने सदियों की तपस्या और परिश्रम के बाद किया। संस्कृति की मानी हुई परिभाषाएं दो हैं– एक व्यापक और दूसरी सीमित। पहले अर्थ में मानवों द्वारा निर्मित आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक विश्व का संस्कृति में समावेश होता है और दूसरे में केवल मानव की मानसिक उन्नति का।

संस्कृति वास्तव में जीवन–पद्धत्ति है जिसकी स्थापना मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है। यह उन अविष्कारों का संग्रह है जिनका अन्वेषण मानव ने अपने जीवन को सफल बनाने के लिए किया है। वास्तविकता यह है कि संस्कृति मानव द्वारा प्रकृति पर प्राप्त विजय की क्रमबद्ध कहानी है। अपने अन्तःकरण तथा बाह्य विश्व पर विजय प्राप्त करके ही मानव सुसंस्कृत और उन्नत हो सकता है।

भारतवर्ष की संस्कृति की आदर्शमयी धारा सत्य और प्रेम से ओत–प्रोत कब से बहती चली आ रही है, इसकी कल्पना आज भी पृथ्वी के कई भूखण्डों पर निवास करने वालों को अभी तक नहीं है। वर्तमान युग की उथल–पुथल में आज का भारत भी अपनी संस्कृति के स्वरूप को भूल गया है। वह भूल गया है कि उसमें इतनी क्षमता रही है कि उसमें अनेकों संस्कृतियों का समावेश हो चुका है। यहाँ आर्य–अनार्य, शक, हूण, पठान, द्रविड, मुगल, पारसी, ईसाई आदि जातियाँ आयीं किन्तु भारतीय संस्कृति उन सबको सदा से यथोचित स्थान देती रही है और अन्ततः सभी संस्कृतियाँ एक ही शहर में आकर समा गयीं। भारत के इतिहास का रहस्य ही उसकी सांस्कृतिक विलाशता और व्यापकता से प्रारम्भ होता है।

समय–समय पर जो लोग रणचण्डी के नृत्य में उन्मत्त और उत्साहित हो, विजय के स्वप्न देखते हुए मरुस्थलों एवं पर्वतमालाओं को लाँघकर भारत में आए, आज उनमें से किसी का भी पृथक् अस्तित्व नहीं है। वे एकाकार होकर एकत्व को प्राप्त हो गए। आज भारतीयों के रूप में सब का स्वर एक साथ ध्वनित हो रहा है। भारतीय संस्कृति की विशालता और एकता की अनुभूति के प्रत्यक्ष परिचय का यह इतिहास आज भी हमारे सम्मुख है।

संस्कृति का अर्थ

संस्कृति शब्द 'सम्यक्' और 'कृति' इन दो शब्दों के योग से बना है। जिसका तात्पर्य होता है सम्यक् निर्माण। संस्कृति अर्थात् सुधारा हुआ, सुव्यवस्थित एवं संस्कार सम्पन्न जीवन का स्वच्छ एक सामाजिक भाव जिसे मनुष्य जीवन का दृष्टिकोण भी कह सकते हैं। यह

एक परम्परा है जिसका सुधार मनुष्य अपने जीवन की सभी दिशाओं में अपने आप करता रहता है। जिस प्रकार एक बालक अपने पारिवारिक जीवन में अपने आप विकास करता रहता है, उसी प्रकार समाज–विशेष भी अपने सांस्कृतिक वातावरण में विकसित होता रहता है। वस्तुतः संस्कृति शब्द का अर्थ 'संस्कार' में समाहित है। संस्कारों का क्षेत्र जीवन की लघु सीमाओं में ही आबद्ध नहीं, बल्कि भारतीय जीवन के अनुसार वह मनुष्य के आंतरिक जीवन तथा जन्म–जन्मान्तर तक अपना आधिकार क्षेत्र बनाए रखते हैं। संस्कृति जीवन की गहराई से मिठास तथा प्रकाश प्राप्त करने में यत्नशील होती है।

दूसरी भाषा में कहें तो संस्कृति किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन–व्यापारों में या सामाजिक सम्बन्धों में मनावता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले तद्–तद् आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए। समस्त सामाजिक जीवन का परमोत्कर्ष संस्कृति में ही होता है। विभिन्न सभ्यताओं का उत्कर्ष तथा अपकर्ष संस्कृति द्वारा ही मापा जाता है।[1] उसके द्वारा ही समाज को सुसंगठित किया जाता है। इसीलिए संस्कृति के आधार पर ही विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और आचारों का समन्वय किया जा सकता है।[2]

संस्कृति एक वस्तु नहीं है जिसकी रचना सौ–पचास वर्षों में हो सके। अनेक शताब्दियों तक एक समाज के लोग जिस प्रणाली और पद्धत्ति का अनुसरण करते हैं उनके विचारों–आचारों और पद्धत्ति से उनकी संस्कृति जानी जा सकती है। वास्तव में संस्कृति जीवन के अनुभवों की एक प्रणाली है जो शताब्दियों से एकत्र होते–होते समाज के अन्दर प्रवेश कर जाती है। जिस समाज के संस्कारो में आज हम निवास करते हैं उसी समाज की सुधार–प्रणाली हमारी संस्कृति है।

सभ्यता शरीर से सम्बन्धित होती है किन्तु संस्कृति हमारे आभ्यन्तर जीवन से सम्बन्धित है जो जन्म–जन्मान्तर से हमारे साथ है और जन्म–जन्मान्तर तक साथ चलती रहेगी। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जितने भी उत्सव होते हैं उनका आधार हमारी संस्कृति ही है। संस्कृति आदान–प्रदान से ही से बढ़ती और घटती है। जब एक देश के निवासी दूसरे देश के निवासियों से मिलते–जुलते हैं तो एक की संस्कृति दूसरे को प्रभावित करती है। धीरे–धीरे वह संस्कृति हमारे अन्तःकरण पर अपना संस्कार करने लगती है। इस प्रकार हमारे ऊपर अन्य संस्कृतियों का प्रभाव पड़ता है।

जहाँ तक भारतीय संस्कृति की बात है तो उसका स्वभाव व्यापक है। उसमें कई संस्कृतियों को अपने अंदर समेट लेने की क्षमता है। यद्यपि भारत में अनेक भाषा–भाषी प्राचीन काल से रहते चले आए हैं, फिर भी सबकी संस्कृति एक है, क्योंकि एक का दूसरे समाज पर प्रभाव पड़ते–पड़ते वह एक ही स्वरूप धारण कर चुकी है। प्राचीन काल से प्रभावित होने वाली संस्कृति की धारा अपना संस्कार बनाए हुए है। किन्तु शताब्दियों से बहती हुई सांस्कृतिक गंगा की धारायें अब विचलित होती–सी प्रतीत होती हैं। उनके मार्ग में अवरोध उत्पन्न हो रहा है। यद्यपि संस्कृति हमारे उच्च विचारों और आध्यात्मिक जीवन की परिचायिका अभी भी है, किन्तु हमारे अन्दर उसकी उदारता और सहिष्णुता का महत्त्व रहते हुए भी हम अपने सिद्धान्तों के अनुरूप अपना आचरण नहीं करते। यह दोष हिन्दू जाति के जीवन में प्रवेश कर गया है जिसके कारण हम आज वह नहीं कर पाते जो कि हमारा कर्तव्य है। हिन्दू जाति में आलस्य और प्रमाद का कारण यह है कि वे एक ओर चिन्तन और सिद्धान्तों के शिखर पर आरोहण करते हुए आदर्श और सिद्धान्त बनाते हैं, और दूसरी ओर उनका आचरण इसके ठीक विपरीत होता है। प्राचीन काल में ऐसा नहीं था। यह हमें 2600 वर्ष भारतीय इतिहास बताता है। हिन्दू जाति की धार्मिक, राजनैतिक जीवन पर अनेकानेक आपत्तियाँ आईं जिनके फलस्वरूप यहाँ की संस्कृति में परिवर्तन आता रहा। कभी जाति को

पतन के गर्त में ले जाने वाली घटायें उमड़ी तो कभी हवा में मिला देने वाली आँधियां आयीं लेकिन जाति का स्वरूप अपनी जगह यतावत है। भारत ने माहत्मा बुद्ध के जीवन काल से लेकर अब तक कई आध्यात्मिक, राजनीतिक परिवर्तन देखें जिसके फलस्वरूप भारतीय जनता अपनी संस्कृति को भूलती गई। यद्यपि बीच–बीच में पुनरुत्थान होता रहा, भारत ने अनेकानेक विद्वानों को जन्म देकर उनकी वाणी को मुखरित किया ताकि वे उस संस्कृति का पुनरुत्थान करें। किन्तु खोई हुई संस्कृति को पुनः स्थापित करने में पूर्णतया सफलता न मिल सकी। यदि ऐसा होता तो आज भारत अपने सिद्धान्तों को भूलकर अकर्मण्यता और आलस्य के गर्त में न गिरता। आज वह अपनी भावी पीढी में संस्कृति का बीजारोपण करने में असमर्थ है, वह उसमें वह जान नहीं फूंक सका जो मनुष्य को वास्तविक रूप में मनुष्य बनाए और उसके अन्तर में उच्च्य आदर्शो की स्थापना पूर्ण रूप से करे।

संस्कृति के विषय में अनेक दृष्टियाँ हैं जिनमें अत्यन्त संकीर्ण दृष्टि उन लोगों की है जो परम्परागत अपने–अपने धर्म या सम्प्रदाय को ही भारतीय संस्कृति समझते हैं। संस्कृत के जिस व्यापक या समन्वयात्मक रूप की हने ऊपर व्याख्या की है उसकी ओर उनका ध्यान नही जाता है।

दूसरी दृष्टि उन लोगों की हैं जो भारतीय संस्कृति को भारतान्तर्गत समस्त सम्प्रदायों में व्यापक न मानकर, कुछ विशिष्ट सम्प्रदायों से सम्बद्ध मानते हैं। इस दृष्टिवाले लोग यद्यपि उपर्युक्त पहली दृष्टि वालों से काफी अधिक उदार हैं, तो भी देखना तो यह है कि इस विचारधारा से प्रभावित भारतीय संस्कृति में वर्तमान भारत की कठिन साम्प्रदायिक समस्याओं के समाधान की तथा साथ ही संसार की सतत प्रगतिशील विचारधारा के साथ भारतवर्ष को आगे बढाने की कहां तक क्षमता है। यदि नहीं तब तो यही आशंका मन में उठती है कि भारतीय संस्कृति के इस नवीन आन्दोलन से देश को लाभ के स्थान में कहीं हानि ही न उठानी पड़े? हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ही दिनों पहले तक सबसे सम्मानित 'भारतीय संस्कृति' शब्द साम्प्रदायिकता से प्रभावित इन विचारधारा के कारण ही अब अपने उच्च्य पद से नीचे गिरने लगा है।

तीसरी दृष्टि उन लोगों की है जो भारतीय संस्कृति को, देश के किसी विशिष्ट एक या अनेक सम्प्रदायों से सीमित या बद्ध न मानकर समस्त सम्प्रदायों से एकसूत्र रूप से व्यापक, अतएव सबके अभिमान की वस्तु, काफी लचीली और सहस्रों वर्षों से भारतीय परम्परा से प्राप्त संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं और विषमताओं के विष को दूर करके राष्ट्र में एकात्मकता की भावना को फैलाने का एकमात्र साधन समझते हैं। स्पष्टतः इसी दृष्टि से भारतीय संस्कृति की भावना देश की अनेक विषम समस्याओं के समाधान का एकमात्र साधन हो सकती है। दूसरी ओर लक्ष्य या उद्देश्य की दृष्टि से भी भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में लोगों में विभिन्न धारणाएँ फैली हुई हैं।

भारतीय संस्कृति के गौलिक आधार

भारतीय संस्कृति का मूल आधार समन्वयमूलक दृष्टि रही है। यद्यपि समन्वयमूलक दृष्टि आज के वैज्ञानिक युग में अत्यधिक व्यापक और विस्तृत हो गयी है, तो भी यह दृष्टि नित्य नवीन कल्पनामूलक है, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। विद्वान् इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि वर्तमान पौराणिक हिन्दू धर्म के लिए निगमागम–धर्म नाम पण्डितों के लिए प्रसिद्ध है.। तात्पर्य यह है कि परम्परागत वर्तमान पौराणिक हिन्दू धर्म का आधार केवल 'निगम' न होकर 'आगम' भी है। दूसरे शब्दों में वह निगम–आगम–धर्मों का समन्वित रूप है।[3] यहाँ निगम का मौलिक अर्थ, हमारी सम्पत्ति में निश्चित या व्यवस्थित काल से आती हुई वैदिकेतर धार्मिक या सांस्कृतिक परम्परा से है।[4]

इस बात से हम इंकार नहीं कर सकते कि संस्कृति का मूल स्रोत वेदों से प्रवाहित होकर अब तक इसलिए अच्छेद्य है कि इसी संस्कृति की महिमा में मानव ने आध्यात्मिक स्वतंत्रता के प्रथम प्रभात का दर्शन किया है। यह सर्वानुभूति सत्य है कि भारत में ही उसने प्रथम विकास पाया। अपरिमित वैमत्य और संदेह के पश्चात् इस सत्य को मानना पड़ता है कि भारतीय संस्कृति का उद्भव और प्रसार यहाँ के अग्रजन्मा ऋषियों की तत्त्वानुभूति के आधार पर अवलम्बित है। वैदिक भावराशि भारतीय संस्कृति का मूल है। धर्मग्रन्थ, स्मृति, पुराण सभी वेद की छाया में फूले और फले। ये भारतीय संस्कृति के फल–फूल और पत्र भी कहे जा सकते हैं। भारतीय संस्कृति में कुछ विशेषताएँ हैं जो अन्य संस्कृतियों में नहीं मिलती।

भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत वेदों से प्रवाहित हुआ। भारतीय जीवन के सभी विभागों में वेदों का ज्ञान अभी भी चिरंजीवी है। जाने–अनजाने में प्रत्येक नर–नारी के जीवन पर इसका अत्यधिक प्रभाव हैं। भारत का सम्पूर्ण वातावरण वेदों और उपनिषदों के संस्कारों द्वारा संजीवित है। संस्कृति का मूल स्रोत वेदों से प्रवाहित होकर अब तक इसलिए अच्छेद्य है कि इसी संस्कृति की महिमा में मानव ने आध्यात्मिक स्वतंत्रता के प्रथम प्रभात का दर्शन किया। यह सर्वनुभूति सत्य है कि भारत में ही उसने प्रथम विकास पाया।

सन्दर्भ सूची

(1) कस्यापि देशस्य समाजस्य वा विभिन्नजीवनव्यापारेषु सामाजिकसम्बन्धेषु वा मानवीयत्वदृष्ट्या प्रेरणा प्रदानां तत्तदादर्शानां समष्टिरेव संस्कृतिः ... । वस्तुतस्तस्यामेव सर्वस्यापि सामाजिकजीवनस्योत्कर्षः पर्यवस्यति। तयैव तुलया विभिन्न सभ्यतानामुत्कर्षापकर्षौ मीयते। किं बहुना, संस्कृतिरेव वस्तुतः 'सेतुविधृतिरेषां लोकानामसम्भेदाय। छान्दोग्योपनिषद्, 8/4/1

(2) इत्येवं वर्णयितुं शक्यते। अत एव च सर्वेषां धर्माणां सम्प्रदायानामाचाराणां च परस्परं संस्कृतेरेवाधारेण कर्तुं शक्यते। प्रबन्धप्रकाश, भाग 2, पृ. 8

(3) हिन्दुत्व, पृ. 491

(4) आगतं पंचक्वत्रात्तु गतं च गिरिजानने। मतं च वासुदेवस्य तस्मादागममु (?) च्यते।। शब्दकल्पद्रुम।